समयसार, ४० श्लोक का भावार्थ है। आज तो गुजराती चलेगी, हिन्दी गये।

भावार्थ - घी से भरे हुए घड़े को व्यवहार से 'घी का घड़ा' कहा जाता है, तथापि निश्चय से घड़ा घी-स्वरूप नहीं है; घी, घीस्वरूप है, घड़ा मिट्टीस्वरूप है;... आहाहा! यह तो दृष्टान्त (कहा)। **इसी प्रकार वर्ण, पर्याप्ति, इन्द्रियों इत्यादि के साथ**

एक क्षेत्रावगाहरूप सम्बन्धवाले जीव को सूत्र में व्यवहार से 'पंचेन्द्रिय जीव, पर्याप्त जीव, बादर जीव, देव जीव, मनुष्य जीव' इत्यादि कहा गया है, तथापि निश्चय से जीव उस स्वरूप नहीं है;... यह तो बाह्य की स्थिति की बात की। यह क्या कहा? वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, शरीर, संहनन तो बाह्य की चीज़ है; पर्याप्त, अपर्याप्त भी बाह्य की चीज़ है, वह अन्तर में है नहीं। व्यवहार से कहे गये हैं, इसलिए वस्तु-आत्मा की नहीं। आत्मा उसमय नहीं। **इत्यादि पुद्गलस्वरूप हैं, जीव ज्ञानस्वरूप है।** उसे कहा कि प्रभु! जीव ज्ञानस्वरूप है। जैसे घड़ा मिट्टीस्वरूप है, वैसे यह जीव ज्ञानस्वरूप है- ऐसा कहा।

अब इतना कहा, इसलिए उसे-समझनेवाले को ज्ञान हो गया - ऐसा नहीं है। उसे कहा कि ज्ञानस्वरूप है-ऐसे उसका लक्ष्य कराया। अब उसे अनुभव कब हो? वह तो अन्तरजीवद्रव्य का-ज्ञानमय वस्तु का आश्रय करे तो उसे ज्ञानमय है, ऐसा अनुभव हो। गुरु ने, भगवान ने या आचार्यों ने कहा कि घी का घड़ा नहीं, घड़ा मिट्टीमय है। यह तो ठीक है। इसी प्रकार पर्याप्त, अपर्याप्त आदि, संहनन, संस्थान आदि अजीव है, वे जीव नहीं; जीव तो ज्ञानमय है। आहा! इतना कहा, इसलिए उसे-शिष्य को ज्ञानमय जीव स्वभाव का अनुभव हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा इसमें से कहाँ निकलता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें यह निकलता है। वह तो बाह्य की बात है न? अभ्यन्तर की अब आयेगी। गुणस्थान, रागादि अभ्यन्तर भी जीवस्वरूप नहीं है। यह तो बाह्य की बात की। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, रंग, राग - इसके पश्चात् आयेगा। यहाँ तो रंग, गंध, रस, स्पर्श, शरीर, संहनन, संस्थान, पर्याप्त-अपर्याप्त, ये सब जीव नहीं हैं। जीव ज्ञानस्वरूप है —ऐसा इन सन्तों ने-आचार्यों ने कहा, तथापि उसे ज्ञानस्वरूप का ख्याल आया कि यह ज्ञानस्वरूप है इतना, परन्तु इससे उसे आत्मा का-ज्ञानस्वरूप का अनुभव हुआ - ऐसा नहीं है। यह तो उसे व्यवहार से समझाया कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, भाई!

आचार्यों ने भी व्यवहार विकल्प में आकर इसे समझाया और समझनेवाले के

ख्याल में आया इतना कि यह ज्ञानस्वरूप है, ऐसा कहते हैं, बस! यह लक्ष्य में आया कि ज्ञानस्वरूप है परन्तु उसे ज्ञानस्वरूप का अनुभव कब हो? आहाहा! वह अन्तर में ज्ञायकस्वभाव का अवलम्बन करे, (तब अनुभव हो)। यहाँ त्रिकाली द्रव्यस्वभाव का वर्णन है न? द्रव्यवस्तु जो द्रव्य है, वह ये बाह्य रंग, गंध आदि तो नहीं। वह ज्ञानस्वरूप है, ऐसा कहा परन्तु वह ज्ञानस्वरूप इसके ख्याल में आया कि ज्ञानस्वरूप है इतना, परन्तु सुननेवाले को आत्मा-ज्ञानस्वरूप का अनुभव नहीं हुआ। आहाहा! कहा, इसलिए उसे ज्ञान हो गया और सुना, इसलिए उसे ज्ञान हो गया... आहाहा! ऐसा नहीं है। आहाहा!

ज्ञायकस्वभाव जो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप द्रव्य, हों! उस द्रव्यस्वरूप की दृष्टि करने से (अनुभव होता है) यह तो सुना और ख्याल में आया कि वह तो ज्ञानमय है। अब शास्त्र दिशा दिखाकर अलग रहे, ऐसे गुरु भी दिशा दिखाकर अलग रहते हैं। ज्ञानमय है, ऐसा जब यह स्वयं अन्दर में जाये... आहाहा! पर्याय में ज्ञानमय है - ऐसा ख्याल में आया, वह तो व्यवहार हुआ, निश्चय नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

निश्चय तो ज्ञायकस्वरूप का अनुभव करे, तब यह ज्ञायकस्वरूप है, ऐसा इसे ख्याल आवे, तब सच्चा निर्णय (कहलाता है)। आहाहा! यह तो वह चला न, गौतमस्वामी का व्यवहार का... कहा हुआ, उस पर से यह अधिक आया। गौतमस्वामी ने व्यवहार का आश्रय लेकर शिष्यों की प्रवृत्ति व्यवहार से कराते हैं, लाभदायक है इसलिए। ऐसा है नहीं। आहाहा! गौतम गणधरों ने जीव को चौदह भेदस्थान द्वारा शिष्य को समझ में आये, इसलिए अनुग्रह करके कहा है परन्तु इससे उसे ख्याल में आया कि यह तो भेद से कहते हैं, परन्तु इस भेद का ज्ञान उसे कब होता है? कि अभेददृष्टि करे, तब इस भेद का ज्ञान अनेकान्त का (ज्ञान) होता है। ऐसी बात है। बहुत फेरफार, बड़ा फेरफार! ऐसा कर डाला, देखो न! व्यवहार से समझाया, इसलिए व्यवहार की प्रवृत्ति लाभदायक है, ऐसा (अज्ञानियों ने) सिद्ध किया।

मुमुक्षु : उसमें से कुछ लाभ होता हो तो समझाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ कुछ नहीं। उसे मात्र ख्याल में आवे, इतनी बात है। यहाँ

जाना है, इतना ख्याल में आवे, चलना है वह तो इसे फिर स्वयं को (चलना है)। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई!

यहाँ तो लिया बाह्य; अब ६८ में अभ्यन्तर की बात लेते हैं। क्या कहा? २९ बोल में कितने ही बाह्य हैं और कितने ही अभ्यन्तर हैं। जो वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, संहनन, संस्थान हैं, वे सब बाह्य हैं; वे तो आत्मा की पर्याय में भी नहीं, इसलिए उन्हें भिन्न कहा। अब इसे जीवद्रव्य वस्तु जो अखण्ड है, वह अभ्यन्तर के राग-द्वेष, गुणस्थान, मार्गणास्थान के भेद से रहित है, अभ्यन्तर के भेद से भी रहित है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! इसलिए अन्तिम गाथा (कहते हैं)।

गाथा ६८

एतदपि स्थितमेव यद्रागादयो भावा न जीवा इति–

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिया जे इमे गुणट्ठाणा।
ते कह हवंति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता।।६८।।

मोहनकर्मण उदयात्तु वर्णितानि यानीमानि गुणस्थानानि।
तानि कथं भवंति जीवा यानि नित्यमचेतनान्युक्तानि।।

मिथ्यादृष्ट्यादीनि गुणस्थानानि हि पौद्गलिकमोहकर्मप्रकृतिविपाकपूर्वकत्वे सति नित्यमचेतनत्वात् कारणानुविधायीनि कार्याणीति कृत्वा, यवपूर्वका यवा यवा एवेति न्यायेन, पुद्गल एव, न तु जीवः। गुणस्थानां नित्यमचेतनत्वं चागमाच्चैतन्यऽस्वभावव्याप्त –स्यात्मनोऽतिरिक्तत्वेन विवेचकैः स्वयमुपलभ्यमानत्वाच्च प्रसाध्यम्।

एवं रागद्वेशमोहप्रत्ययकर्मनोकर्मवर्गवर्गणास्पर्धकाध्यात्मस्थानानुभागस्थानयोगस्थान –बंधस्थानोदयस्थानमार्गणास्थानस्थितिबंधस्थानसंक्लेशस्थानविशुद्धिस्थानसंयमलब्धि –स्थानान्यपि पुद्गलकर्मपूर्वकत्वे सति, नित्यमचेतनत्वात् पुद्गल एव, न तु जीव इति स्वयमायातम्। ततो रागादयो भावा न जीव इति सिद्धम्।

तर्हि को जीव इति चेत्–

अब कहते हैं कि (जैसे वर्णादिभाव जीव नहीं हैं, यह सिद्ध हुआ, उसी प्रकार) यह भी सिद्ध हुआ कि रागादिभाव भी जीव नहीं हैं —

मोहनकरम के उदय से, गुणस्थान जो ये वर्णये।
वे क्यों बने आत्मा, निरंतर जो अचेतन जिन कहे?॥६८॥

गाथार्थ - [यानि इमानि] जो यह [गुणस्थानानि] गुणस्थान हैं, वे

[मोहनकर्मणः उदयात् तु] मोहकर्म के उदय से होते हैं [वर्णितानि] ऐसा (सर्वज्ञ आगम में) वर्णन किया गया है; [तानि] वे [जीवाः] जीव [कथं] कैसे [भवंति] हो सकते हैं [यानि] कि जो [नित्यं] सदा [अचेतनानि] अचेतन [उक्तानि] कहे गये हैं ?

टीका - ये मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थान पौद्गलिक मोहकर्म की प्रकृति के उदयपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से, कारण जैसा ही कार्य होता है ऐसा समझकर (समझकर, निश्चय कर) जौ पूर्वक होनेवाले जो जौ, वे जौ ही होते हैं, इसी न्याय से, वे पुद्गल ही हैं-जीव नहीं और गुणस्थानों का सदा ही अचेतनत्व तो आगम से सिद्ध होता है, तथा चैतन्यस्वभाव से व्याप्त जो आत्मा, उससे भिन्नपने से वे गुणस्थान भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान हैं, इसलिए भी उनका सदा ही अचेतनत्व सिद्ध होता है।

इसी प्रकार राग, द्वेष, मोह, प्रत्यय, कर्म, नोकर्म, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, अध्यात्म -स्थान, अनुभागस्थान, योगस्थान, बन्धस्थान, उदयस्थान, मार्गणास्थान, स्थितिबन्ध -स्थान, संक्लेशस्थान, विशुद्धिस्थान और संयमलब्धिस्थान भी पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से पुद्गल ही हैं-जीव नहीं, ऐसा स्वतः सिद्ध हो गया। इससे यह सिद्ध हुआ कि रागादिभाव जीव नहीं हैं।

भावार्थ - शुद्धद्रव्यार्थिकनय की दृष्टि में चैतन्य अभेद है और उसके परिणाम भी स्वाभाविक शुद्ध ज्ञान-दर्शन हैं। परनिमित्त से होनेवाले चैतन्य के विकार, यद्यपि चैतन्य जैसे दिखाई देते हैं तथापि, चैतन्य की सर्व अवस्थाओं में व्यापक न होने से चैतन्यशून्य हैं-जड़ हैं और आगम में भी उन्हें अचेतन कहा है। भेदज्ञानी भी उन्हें चैतन्य से भिन्नरूप अनुभव करते हैं, इसलिए भी वे अचेतन हैं, चेतन नहीं।

प्रश्न - यदि वे चेतन नहीं हैं तो क्या हैं ? वे पुद्गल हैं या कुछ और ?

उत्तर - वे पुद्गलकर्मपूर्वक होते हैं, इसलिए वे निश्चय से पुद्गल ही हैं क्योंकि कारण जैसा ही कार्य होता है।

इस प्रकार यह सिद्ध किया कि पुद्गलकर्म के उदय के निमित्त से होनेवाले चैतन्य के विकार भी जीव नहीं, पुद्गल हैं।

गाथा - ६८ पर प्रवचन

अब कहते हैं कि (जैसे वर्णादिभाव जीव नहीं हैं, यह सिद्ध हुआ, उसी प्रकार) यह भी सिद्ध हुआ कि रागादिभाव भी जीव नहीं हैं— रागादि, गुणस्थान, मार्गणास्थान इत्यादि जीव नहीं है। सुन,

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिया जे इमे गुणट्ठाणा।
ते कह हवंति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता।।६८।।

मोहनकरम के उदय से, गुणस्थान जो ये वर्णये।
वे क्यों बने आत्मा, निरंतर जो अचेतन जिन कहे ?॥६८॥

जैसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, संहनन को अचेतन कहा, वैसे गुणस्थान, मार्गणास्थान के भेदों को भी अचेतन कहा। आहाहा! ये सब भेद जीव की पर्याय में होते हैं, तथापि जीवद्रव्य त्रिकाल है (वह) इनरूप नहीं, इसलिए इन्हें अचेतन कहा है। आहाहा!

मुमुक्षु : चेतन की पर्याय अचेतन।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ चैतन्य त्रिकाली है, उसका यह स्वरूप नहीं है। आहाहा! जो दृष्टि का विषय द्रव्यस्वभाव कहना है, वह द्रव्य है, वह तो किसी प्रकार इनरूप नहीं हुआ है। आहाहा! गुणस्थान, मार्गणास्थान के भेदरूप जीवद्रव्य नहीं हुआ है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसकी पर्याय हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय को यहाँ व्यवहार में डाल दिया है। वह पर्याय इसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया ? यह तो अलौकिक बातें हैं, बापू! आहाहा! समयसार अर्थात्... आहाहा!

टीका - ये मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थान... पहले लिया था वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, शरीर, संहनन, संस्थान आदि, वह तो बाह्य चीज़ थी। अब यह तो अभ्यन्तर में ही इसके भेद हैं। समझ में आया ? आहाहा! **मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थान पौद्गलिक मोहकर्म की प्रकृति के...** आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका में है, भाई! '**मोहजोगभवा**' यह गाथा जयसेनाचार्य की टीका में है।

मुमुक्षु : गोम्मटसार में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गोम्मटसार में है परन्तु वह तो यहाँ है यह। गोम्मटसार का शब्द है, वह यहाँ रखा है, जयसेनाचार्य ने। गोम्मटसार में है, बात सच्ची। '**मोहजोगभवा**' गुणस्थान है मोह और योग से भेदस्वरूप से हुए हैं, वस्तु में नहीं है। आहाहा!

मिथ्यात्वपना... ओहोहो! वह जीव द्रव्य में नहीं है। ऐसे तेरहवाँ गुणस्थान और चौदहवाँ गुणस्थान वह **पौद्गलिक मोहकर्म की प्रकृति के उदयपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से,...** आहाहा! भगवान चैतन्य द्रव्य है, ज्ञायक ध्रुवद्रव्य है, उसमें यह वस्तु-भेद नहीं है। ये सब भेद पड़े हैं मोहकर्म के उदय के निमित्त से भेद पड़े हैं। स्वभाव के प्रगट होने से भेद पड़े हैं - ऐसा नहीं। आहाहा! यहाँ एक ही लिया, उसमें योग लिया।

मोहकर्म की प्रकृति के उदयपूर्वक होते होने से,... प्रकृति का उदय अर्थात् जड़ है वह; उसके निमित्त से यहाँ भेद पड़ा, कहते हैं। मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरति समकित, विरताविरति श्रावक, विरति प्रमत्त, अप्रमत्त इत्यादि भेद से ठेठ सयोगी और अयोगी (गुणस्थानपर्यन्त)। आहाहा! यह मोहकर्म की प्रकृति, मोहकर्म की प्रकृति के **उदयपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से,...** आहाहा! **कारण जैसा ही कार्य होता है...** कारण पुद्गल प्रकृति है, इसलिए उसका कार्य भी ये सब वैसे हैं-ऐसा कहते हैं। गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवस्थान, राग-द्वेष, पुण्य-पाप, लब्धिस्थान। आहाहा! यह कारण जैसे कार्य होते हैं। कारण मोहकर्म की प्रकृति है, उसके गुणस्थान उसके भेद हैं, वह उसका कार्य है, कहते हैं। आहाहा! भगवान कारणस्वभाव प्रभु का यह कार्य नहीं है। आहाहा! आहाहा! चैतन्यघन, विज्ञानघन ध्रुव का कार्य तो निर्मल कार्य हो, वह (उसका कार्य है)। ये सब भेद हैं, वह तो मलिन अचेतन कार्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... कैसे होता है पर्याय में?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चेतन की पर्याय ही अचेतन है। इसमें ज्ञानस्वभाव आया नहीं। सयोगपने में, अयोगपने में कहीं ज्ञानस्वभाव तो आया नहीं। आहाहा! अविरति सम्यग्दर्शन, अविरतिभाव में ज्ञानस्वभाव आया नहीं। भगवान चैतन्य ज्योत है, आहाहा! क्या स्वरूप और क्या गाथा!!

कारण जैसा... मोहप्रकृति जो पुद्गल कारण हैं, उसके ये कार्य हैं; इसलिए पुद्गल हैं। आहाहा! कठिन बात है भाई! यहाँ तो त्रिकाली जीवद्रव्य है, उसमें उदयभाव तो नहीं, उपशम, क्षयोपशम भी उसमें नहीं। यहाँ तो अभी उदयभाव के प्रकार के भेद का वर्णन है। समझ में आया? आहाहा! भगवान अन्दर चैतन्य पिण्ड प्रभु ऐसे भिन्न अखण्ड चैतन्यज्योति, जलहल ज्योति, चन्द्र शीतल ध्रुव (विराजता है)। आहाहा! ऐसे भगवान / द्रव्य में ये नहीं हैं; इसलिए द्रव्य चैतन्यस्वरूप है तो ये अचेतनस्वरूप हैं - ऐसा (कहते) हैं। आहाहा!

अब यहाँ तो मुझे तो दूसरा कहना है कि ऐसा इसे गुरु ने कहा (तो) इसके ख्याल में आया कि ये गुरु और शास्त्र ऐसा कहते हैं कि इस प्रकृति के कारण से कार्य होता है, वह सब अचेतन है; ये चैतन्यद्रव्य के नहीं, ऐसा इसे ख्याल में आया, बस इतना! परन्तु ख्याल में आया, यह व्यवहार से आया है। गुरु ने कहा और इसे परलक्ष्य से (ज्ञान) हुआ, वह ख्याल में व्यवहार से आया है। आहाहा! सूक्ष्म बात बहुत, बापू! सूक्ष्म बात कहकर लोग उपहास करते हैं। सूक्ष्म... सूक्ष्म करके यह सब उड़ा देना है। अरे! भगवान! तू प्रभु है, भगवान! तुझे यह न जँचे तो क्या हो? आहाहा!

यहाँ तो भगवान अन्दर है, वह तो गुणस्थान में आता नहीं, ऐसा कहते हैं। भेद में आता नहीं। तू स्वयं प्रभु है न! प्रभु! आहाहा! तेरा द्रव्य, भेद में आता नहीं न प्रभु! ऐसा तुझे क्या लगता है? आहाहा! ओहो! गजब बात! सन्तों ने तो केवलज्ञान को खड़ा कर दिया है!! आहाहा!

दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, कहते हैं कि प्रकृति के कारण हुए हैं, इसलिए प्रकृति का कार्य है; जीव का नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, शास्त्र के पठन का विकल्प, नवतत्त्व की श्रद्धा का विकल्प... आहाहा! यह प्रकृति के कारण उत्पन्न हुआ कार्य पुद्गल का है, कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय की श्रद्धा का भाव, वह पुद्गल का है, कहते हैं। अरे रे! द्रव्य ज्ञायकस्वरूप प्रभु है, उसमें यह कहाँ है? आहाहा! निमित्त के आधीन हुआ भाव निमित्त का है; प्रकृति के आधीन हुआ भाव, प्रकृति का है; पुद्गल के आधीन हुआ भाव, पुद्गल का है; स्वाधीन आत्मा का भाव नहीं है।

आहाहा! वीतरागी सन्तों के अतिरिक्त कौन कहे ? भाई! आहाहा! जिसे जगत की दरकार नहीं, समाज संगठित रहेगा या नहीं (इसकी दरकार नहीं)। आहाहा! ये दिगम्बर सन्त! 'नागा बादशाह से आघा।' जिन्हें समाज की कुछ पड़ी नहीं है। समाज को यह समझ में आयेगा या नहीं ? समाज संगठित रहेगा या नहीं ? उपहास तो नहीं करेगा न ? अरे! सुन, प्रभु सुन, भाई!

इसकी पर्याय में होनेवाले दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव और इसकी पर्याय में होनेवाले गुणस्थान, मार्गणास्थान के भाव... आहाहा! परन्तु यहाँ कहते हैं ये पर्याय में होते भाव, वे द्रव्य से हुए भाव नहीं हैं। आहाहा! भगवान ज्ञायक चैतन्यमूर्ति प्रभु, वह प्रभु आत्मा तो वीतरागस्वभाव का बिम्ब है। वह वीतरागस्वभाव के कार्य ऐसे कहाँ होंगे ? आहाहा! वे तो अचेतन प्रकृति जो पुद्गल, उसके कारण से हुए कार्य हैं, इसलिए वे पुद्गल हैं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। अभी तो लक्ष्य में ऐसा आना कठिन (पड़ता है)। शास्त्र ऐसा कहते हैं, प्रभु ऐसा कहते हैं, उसे ख्याल में ले। ख्याल में आने पर भी, वह वस्तु का अनुभव नहीं, वह परलक्ष्यी ज्ञान हुआ। आहाहा! चैतन्यद्रव्यस्वभाव, उस भेद का भी लक्ष्य छोड़कर जो ख्याल में आया, लक्ष्य में आया कि सन्त, आचार्य, मुनि, केवली ऐसा कहते हैं, तथापि उस लक्ष्य का भी लक्ष्य छोड़कर... आहाहा!

आठ वर्ष के राजकुमार बालक... आहाहा! वे हीरा-माणिक के स्फटिकमणि के मकान हों, आहाहा! उसमें यह भान हो। अरे! हम तो आनन्दस्वरूप हैं, हम तो ज्ञायकस्वरूप प्रभु हैं। आहाहा! आहाहा! जिसे अन्तर के आनन्द का स्वाद आया, आहाहा! वह उसका कार्य है। यह भेद उसका कार्य नहीं। आहाहा! ये वन में बाघ और सिंह के बीच अकेले चले जाते हैं। कोई मुझे जाने या पहचाने, ऐसा कुछ रहा नहीं। आहाहा! मेरा प्रभु पूर्णानन्द का नाथ है, उसे पर्याय में पूर्णानन्द प्रगट करने के लिये हम जंगल में, बाहर में नहीं परन्तु अन्दर में, जाते हैं। आहाहा! भाई! इसकी चमत्कारी दशा, वस्तु कैसी होगी ? आहाहा!

यह भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु! गुरु इसके ख्याल में कहा (इसलिए) आया। इसलिए वहाँ अटके नहीं यह! आहाहा! उसे साधने को अन्तर में जाता है। आहाहा! यह है तो अभ्यन्तरभाव, परन्तु वह पर्याय का अभ्यन्तरभाव है। संहनन, संस्थान,

शरीर वह बाह्य-अत्यन्त बाह्य का भाव है और यह इसकी पर्याय के अभ्यन्तर भाव हैं। आहाहा! वह भी तू नहीं। वह जीवद्रव्य नहीं, ऐसा जहाँ इसे लक्ष्य में-ख्याल में आया... आहाहा! वहाँ यह अन्तर में उतर जाता है। अभ्यन्तर के भाव के भेद से छूटकर... आहाहा! अभ्यन्तर भगवान पूर्णानन्द का नाथ जीवद्रव्य है, वहाँ चला जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, प्रभु! मार्ग तो ऐसा है, भाई! अरे! जगत सत्य को अभी आरोप देता है कि यह एकान्त हैं, महावीर के मार्ग से विरुद्ध कर दिया है। अरे! प्रभु! सुन न भाई! महावीर और सन्त सब एक ही बात करते हैं। आहाहा! इसे दया, दान, व्रत, तप, और भक्ति से धर्म मनाना है, (इसलिए यह बात) इसे खटकती है।

यहाँ तो ये (रागादिक) तो नहीं, परन्तु गुणस्थान के, मार्गणास्थान के भेद भी जीव के नहीं हैं, तो उनसे जीव को लाभ नहीं। इस गुणस्थान के भेद का आश्रय-लक्ष्य करे तो आत्मा को लाभ होता है-यह तीन काल में नहीं। जैसे राग से लाभ नहीं होता; संहनन, संस्थान से लाभ नहीं होता; वैसे यहाँ गुणस्थान के भेद करने से भी आत्मा को लाभ नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है। भगवान तीन लोक के नाथ... आहाहा! जिनेश्वरदेव, इन्द्र और गणधरों की उपस्थिति में, चक्रवर्ती छह खण्ड का धनी सुनने बैठा हो... आहाहा! उसे प्रभु ऐसा कहते हैं-भगवन्त! तेरा स्वरूप तो अखण्डानन्द प्रभु अन्दर है न! आहाहा! यह भेद तेरा स्वरूप नहीं; अचेतन है। अर र! आहाहा! यह राग-फाग और स्त्री-पुत्र तो कहीं रह गये! आहाहा! तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान सभा में फरमाते हैं, वह यह बात है।

मुमुक्षु : मोक्षमार्ग से मोक्ष की प्राप्ति नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षमार्ग से मोक्ष की प्राप्ति, यह भी व्यवहार है। मोक्ष की प्राप्ति द्रव्य के आश्रय से होती है। मोक्षमार्ग है, उसका तो व्यय होता है और भाव का उत्पाद होता है, वह त्रिकाली कोई भाव है, उसके आश्रय से होता है या गया उसके आश्रय से होता है? भाई! ऐसी बात है। आहाहा! कल एक बात की थी। ३४ वर्ष की उम्र का चार दिन पीलिया होकर मर गया। वींछिया अपने, भाई! वींछिया, हरिभाई हैं न? वींछिया है, उनका एक भाई 'जसदण' में है, एक मुम्बई में है, यह छोटा ३४ वर्ष का था। कोई रोग नहीं था, चार दिन

में पीलिया हुआ। यह पीलिया, पीलिया। उसका हो गया पीलिया, देह उड़ गयी। आहाहा! वह तो परवस्तु है, उसकी बात हुई। आहाहा! वह तो तुझमें नहीं, तू वहाँ नहीं परन्तु यहाँ तो भेद पड़ा वह तुझमें नहीं और भेद में तू नहीं। आहाहा! देवीलालजी!

प्रभु! तू कहाँ है? आहाहा! इन गुणस्थान के और मार्गणास्थान के भेद में तू नहीं है। आहाहा! तेरी मौजूदगी / अस्तित्व तो उनसे भिन्न है। अरे! यह बात! अभी तो यह स्त्री-पुत्र और पैसे में से हटना कठिन लगता है। अर र! उसमें फिर संहनन, संस्थान की पर्याय मेरी नहीं। उसमें से आगे आने पर गुणस्थान और राग भी मुझमें नहीं, उनमें मैं नहीं, वे मुझमें नहीं। आहाहा! वीतराग जिनेश्वर के पंथ में यह मार्ग है। इस प्रकार अन्यत्र कहीं वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं है, भाई!

इसे पूर्णस्वरूप है वह लक्ष्य में लेने के लिये बताते हैं। आहाहा! ऐसा लक्ष्य तो कर कि यह भेद है, उनमें तू नहीं और भेद है, वह अचेतन है। चेतनस्वरूप द्रव्यस्वभाव उनमें आया नहीं और द्रव्यस्वभाव में वे हैं नहीं। आहाहा! ऐसा सन्त, गुरु, भगवान लक्ष्य कराते हैं, तथापि वह लक्ष्य गया; इसलिए वहाँ उसे अनुभव हो गया (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसा मार्ग है। जगत की बाहर की (चीज़) यह पैसा, लक्ष्मी, शरीर, वाणी, संहनन, संस्थान को तो यहाँ उड़ा दिया। तुझे बाहर की चमक दिखायी दे (परन्तु) प्रभु! वह तो सब अचेतन मिट्टी है। यह शरीर, वाणी, पैसा, मकान, संहनन, मजबूत हड्डियाँ और संस्थान - शरीर के आकार, ये सब चमक, प्रभु! यह तो जड़ की दशायें हैं। उनमें तू नहीं, तुझमें वे नहीं। आहाहा!

इसलिए यहाँ तो आगे लेकर ६८ (गाथा में बात करते हैं)। वह तो बाह्य की चमकृत का निषेध किया। आहाहा! अब अभ्यन्तर में जो त्रिकाली अभ्यन्तर है, उस स्वरूप में नहीं परन्तु पर्याय में अभ्यन्तर, अर्थात् यहाँ की अपेक्षा से अभ्यन्तर। बाकी उस पर्याय की अपेक्षा से अभ्यन्तर तो त्रिकाल है। आहाहा! कहते हैं कि यह बाहर की यह सब चमक-संहनन, संस्थान और वर्ण, गंध, रस और रूपवान, काला, हरा, और... आहाहा! मीठा रस और सुगन्धित श्वास आवे और... गंध मारे कितनों की ही श्वास गन्ध मारती है। हो जवान और श्वास गन्ध मारती हो। वे चीज़ें तो कहीं रह गयीं, कहते हैं। वह चीज तो तेरी नहीं और तुझमें नहीं और तू वहाँ नहीं। आहाहा! परन्तु तेरी पर्याय में जो गुणस्थान,

मार्गणास्थान, राग, दया, दान, व्रतादि के विकल्प आते हैं, वह बाह्य की अपेक्षा से अभ्यन्तर है और इसकी अपेक्षा से तो त्रिकाली वस्तु वह अभ्यन्तर है, वे बाह्य हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग, इसलिए लोगों को-बेचारों को लगता है, हों! सोनगढ़वाले एकान्त हैं, ऐसा है। चन्द्रशेखर विरोध करता है, बापू! उसकी दृष्टि मिथ्यात्व है, उसमें यह भाग उसे सूझता ही है। आहाहा!

चैतन्य अद्भुतता अद्भुत चमत्कार के रत्नों से भरपूर भगवान है। आहाहा! उस अभेद में-प्रभु में ये भेद नहीं है। आहाहा! और ऐसे गुणस्थान आदि भेद में तू आता नहीं है। आहाहा! **कारण जैसा ही कार्य होता है...** इसकी इतनी व्याख्या चली। पुद्गलकर्म कारण है। आहाहा! पहले पुद्गल से, कर्म से आया हुआ संयोग, संयोग, संहनन, संस्थान, शरीर (आदि) कर्म के निमित्त से आये हुए संयोग हैं। उन संयोगों से भिन्न कहा। अब प्रकृति के निमित्त से होता पर्याय में भेद... वह तो प्रकृति के निमित्त से चीज़ें मिली थी। यह शरीर, वाणी, मन, संहनन, संस्थान... आहा! रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, कर्म के निमित्त से ये प्राप्त चीजें हैं। ये चीज़े तो तेरी नहीं परन्तु अब कर्म के निमित्त से प्राप्त अन्दर का भेद। आहाहा। ये संयोग मिला, ये मिला भेद। आहाहा! इस कारण पर कार्य की व्याख्या चलती है। समझ में आया? आहाहा! उसमें भगवान कारणपरमात्मा है और यह भेद का कार्य आया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या वाणी! कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि! अमृतचन्द्राचार्य! आहाहा! अमृत बहाया है!! आहा! पंचमकाल के जगत का भाग्य!

कहते हैं कि कर्म प्रकृति निमित्त और बाह्यसंयोग-यह शरीर और ये सब प्राप्त हों, वे तो बाह्य चीज़ है। उनसे तो तू भिन्न है परन्तु अब इस प्रकृति से प्राप्त तो अन्दर भेद (वह भी तू नहीं है) ऐसा का ऐसा, ऐसा आया, ऐसा आया, उससे भिन्न। कर्म के कारण यह शरीर मिला, संहनन मिला, संस्थान मिला और यह पर्याप्तपना मिला, पंचेन्द्रियपना मिला, मनुष्यपना मिला, और देवपना मिला और... आहाहा! यह तो इतना तो पहले निकाल दिया। अब प्रकृति से अन्तर में भेद मिला, पहला बाह्य में था। आहाहा! मोहकर्म की प्रकृति जो अभ्यन्तर में है। उस चीज़ की अपेक्षा से अभ्यन्तर (कही) और उससे अभ्यन्तर में यह भेद पड़े वह। ऐसी बातें हैं। तुम्हारा पंकज और अमुक तो कहीं रह गये!

आहाहा! वह तो कहीं पर के फलरूप से तो पर में संयोगरूप में रह गया। वह आत्मा में कहाँ आया? आहाहा! परन्तु वह मेरा है, ऐसा जो राग और मिथ्यात्व, वह भी प्रकृति-जड़ का कार्य है, प्रभु! तेरा नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व आया न? पहले से है न? मिथ्यादृष्टि से लेकर। आहाहा!

यह सन्तों के ज्ञान और उनकी गर्जनायें, तीन लोक के नाथ की गर्जना। जैसे दिव्यध्वनि उठती है। आहाहा! बाघ और बिल्ली दोनों साथ बैठे (हों) शान्त... शान्त... चूहा और सर्प, काला नाग साथ खड़ा हो। दिव्यध्वनि का नाद-प्रभु का (नाद) सुनते हैं। आहाहा! बाहर का वातावरण शान्त हो जाता है। यह तो सुना कहते हैं। आहाहा! सुना जो है, यह जो ज्ञान हुआ है, यह लक्ष्य कराया है, भगवान ने कहा कि यह तू नहीं - ऐसा लक्ष्य कराया, परन्तु इससे तुझे कहीं अनुभव हो गया, ऐसा नहीं। आहाहा! यह तो व्यवहार से समझाया, इसलिए इसे आत्मा का लाभ हो गया और आत्मा के लाभ के लिये इससे कहा (ऐसा नहीं)। मात्र वह तो इसे वस्तु ख्याल में आवे, इतना कराया। सन्तों ने व्यवहार में आकर (कहा) क्योंकि यह पंचम काल की बात है न? इसलिए ऐसा लिया कि आचार्य ने कहा उन आचार्यों ने विकल्प में, व्यवहार में आकर कहा। केवली ने कहा, ऐसा नहीं आया। आहाहा! यह तो पंचम काल के सन्तों ने पंचम काल के जीव के लिये पंचम काल में शास्त्र बनाये। आहाहा! वहाँ केवली ने कहा कि तू आत्मा है और फिर आत्मा दर्शन-ज्ञान को प्राप्त हो वह आत्मा है और फिर कहते हैं कि आत्मा तो अभेद है, ऐसा ध्यान कराया। यहाँ भगवान ने कहा, ऐसा यहाँ नहीं कहा। क्या शैली प्रभु की! आहाहा!

मुमुक्षु : आचार्यों ने कहा, वह भगवान ने ही कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं, नहीं, विकल्प है न यहाँ? वह बताना है। व्यवहार में आया, वह विकल्प है। वह केवली को नहीं। भाई! आहाहा! यहाँ तो निश्चय और व्यवहार दो पक्षों में खड़ा है, यह लेना है। केवली को व्यवहार है नहीं। पंचम काल के सन्त कहते हैं, इसलिए अपनी जाति से कहते हैं। उन्हें स्वयं को विकल्प उठा है। आहाहा! उस शैली की यहाँ बात है। केवली का कहना है, वह अलग बात, परन्तु अभी कहनेवाला जो है, वह विकल्प के व्यवहार के चक्र आया है, खड़ा है। यह बात करते हैं। आहाहा! केवली ने

कहा हुआ (कहते हैं) परन्तु फिर भी स्वयं ने ऐसा कहा न, कि मैं मेरे निज वैभव से कहूँगा! आहाहा! वह भी विकल्प में आये हैं, इसलिए कहूँगा। आहाहा! निर्विकल्प में हो तो उसे कहना है, यह बात आती नहीं। आहाहा! क्या कहा यह?

यहाँ वर्तमान साधु-सन्त हैं, वे कहते हैं, यह यहाँ लेना है। केवली ने कहा हुआ कहा, परन्तु कहनेवाले वर्तमान कौन हैं? आहाहा! यह भी स्वयं स्पष्ट कर दिया है। यह कहनेवाला तो मैं वर्तमान विकल्प में-व्यवहार में आया हूँ, इसलिए कहता हूँ परन्तु यह व्यवहार आया है; इसलिए मुझे लाभदायक है और व्यवहार से दूसरे को कहूँगा; इसलिए उसे आत्मा के लाभ के लिये है, ऐसा नहीं है। उसके ख्याल में आने के लिये इतना है। आहाहा! वह तो परलक्ष्यी है, इसलिए यहाँ तो यह बात है न! लक्ष्य कराकर वे तो अलग रह जाते हैं। अब तू अन्दर में जा! ऐसे जो अभ्यन्तर भेद हैं, वे भी अचेतन हैं, प्रभु! आहाहा!

कारण जैसा ही कार्य... इसके ऊपर से यह सब बात चलती है। ऐसे मुनियों ने कहा। केवली ने कहा, वह अभी यहाँ नहीं। वे विकल्प में आये हैं, उन्होंने कहा। आहाहा! इसलिए वह विकल्प उन्हें लाभदायक है और उसे—दूसरे को लाभदायक है; इसलिए व्यवहार कहते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! मात्र उसे ख्याल में आवे, इसलिए यह बात कहते हैं। आहाहा!

ये मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थान पौद्गलिक मोहकर्म की प्रकृति के उदयपूर्वक होते होने से,... देखा? यह प्रकृति सत्तारूप है, वहाँ तक का यहाँ कार्यभेद नहीं आता, कहते हैं। आहाहा! उदयपूर्वक। आहाहा! समझ में आया इसमें? उदय हुआ, इसलिए यहाँ भेद पड़ा। उसमें जुड़ा है न! आहाहा! **उदयपूर्वक होते होने से,...** ये चौदह गुणस्थान उदयपूर्वक होते होने से। आहाहा! **सदा ही अचेतन होने से,...** क्योंकि प्रकृति स्वयं उदय अचेतन है। **कारण जैसा ही कार्य होता है...** आहाहा! क्या अमृतचन्द्राचार्य की टीका! क्या भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक! ओहोहो! उनकी क्षयोपशम की दशा!! आहाहा!

ऐसा समझकर (समझकर, निश्चय कर)... क्या करके? कारण जैसे ही कार्य हैं। पुद्गल कारण है, इसलिए गुणस्थान भेद उसके कार्य हैं, इसलिए वे अचेतन हैं। किसकी तरह? **जौ पूर्वक होनेवाले जो जौ,...** जौ बोअे और जौ होते हैं। गेहूँ बोअे तो जौं

होंगे ? आहाहा ! जौपूर्वक ही जौ होते हैं। आहाहा ! एकाक्षरी शब्द लिया है। गेहूँ है, वह एकाक्षरी नहीं न ? बाजरा, गेहूँ, दाल, चावल, एकाक्षरी नहीं। जऊ एकाक्षरी है जऊ (जौ) आहाहा ! जौपूर्वक, यह तो उसका कारण बतावे, परन्तु वस्तु **जौ पूर्वक होनेवाले जो जौ, वे जौ ही होते हैं...** जौ पूर्वक होता है, उसका फल जौ होता है। जौ पूर्वक उसका फल गेहूँ और बाजरा होता है ? आहाहा !

जौ पूर्वक... पूर्वक **होनेवाले जो जौ, वे जौ ही होते हैं, इसी न्याय से, वे पुद्गल ही हैं...** पुद्गलपूर्वक होते होने से पुद्गल है। आहाहा ! चौदह गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवस्थान, अरे ! राग, दया, दान, व्रत का राग। प्रभु ! यह तो क्या कहते हैं ? भाई ! आहाहा ! अब इस राग से धर्म मनवाना ! प्रभु... प्रभु ! क्या करता है ? भाई ! आहाहा ! भगवन्त ! तुझे यह शोभा नहीं देता। आहाहा ! जो राग पुद्गल प्रकृति के कारण हुआ है, इसलिए दया, दान के राग को भी पुद्गल कहा है। आहाहा ! कहो, शान्तिभाई ! यह तुम्हारे धूल के पैसे को, जवाहरात को तो पुद्गल कहा। आहाहा ! परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि गुणस्थान के भेद पर्याय में पड़ें (वह भी पुद्गल है)। प्रभु तो अभेद चैतन्य द्रव्य है न ? उस द्रव्य में ये कहाँ हैं ? आहाहा ! द्रव्य त्रिकाली तो चाहे जिस गुणस्थान में और चाहे जिस गति में हो, द्रव्य तो पूर्णानन्द का नाथ वहाँ पूरा विराजमान है। उसमें घिसावट... आ गयी है न ? नहीं ? दो बोल नहीं आये थे ? हीन, हीन, हीनपना और घिसावट नहीं होती। नहीं आया था ? उसमें आया था, देखो ! हानि और घिसावट नहीं होती। यह ६३-६४ में आया, ६३-६४। आहाहा ! जो वस्तु है... आहाहा ! चाहे जो मिथ्यात्वादि में हो, नरक-निगोद में हो परन्तु वस्तु तो वस्तु है। उसमें हीनता और घिसावट कुछ नहीं है, वह तो अखण्डानन्द प्रभु है। आहाहा !

पुद्गल ही हैं-जीव नहीं... पुद्गल ही है। आहाहा। प्रकृति पुद्गल है तो उसके कार्यरूप से जो भेद है, वह पुद्गल ही है, कहते हैं। आहाहा ! अरे ! लब्धिस्थान भी, कहते हैं पुद्गल के निमित्त से यहाँ भेद हो गया न ? यहाँ थोड़ा घटता हुआ ऐसा... आहाहा ! यह भेद पुद्गल में डाल देते हैं। गुणस्थान का भेद, वह तो ठीक परन्तु संयम की पर्याय में भेद की प्राप्ति। शरीर जड़, गुणस्थान जड़, राग जड़ परन्तु यह लब्धि का भेद पड़ा है न इतना ? वह जड़। ऐसी बातें बहुत कठिन, बापू ! आहाहा !

और गुणस्थानों का सदा ही अचेतनत्व तो आगम से सिद्ध होता है,... लो! **मोहजोगभवा** ...आहाहा! आगम से सिद्ध होता है। भगवान ने आगम में ऐसा कहा है। **और गुणस्थानों का सदा ही अचेतनत्व तो आगम से सिद्ध होता है, तथा चैतन्यस्वभाव से व्याप्त जो आत्मा...** क्या कहा अब? भेद है, वे व्याप्त हैं, वे पुद्गल का व्याप्य है। आहाहा! पुद्गल व्यापक है और भेद उनका व्याप्य है। आहाहा! एक ओर ऐसा कहते हैं कि आत्मा व्यापक है और विकारी पर्याय उसका व्याप्य है, अज्ञानदशा में। आहाहा! दूसरी बार कर्ता-कर्म में ऐसा कहते हैं कि कर्म व्यापक है और विकारी पर्याय उसका व्याप्य है। यहाँ यह कहते हैं। आहा! यह पुद्गलकर्म जो व्यापक है, उसका यह भेद, रागादि व्याप्य है।

और गुणस्थानों का सदा ही अचेतनत्व तो आगम से सिद्ध होता है, तथा चैतन्यस्वभाव से व्याप्त जो आत्मा... भगवान तो चैतन्यस्वभाव से व्याप्त है। आहाहा! ऐसे भेद स्वभाव से व्याप्त नहीं। आहाहा! उस भेद का व्याप्यपना, आत्मा व्यापक और भेद व्याप्य-ऐसा नहीं है, कहते हैं। आहाहा! वह तो पुद्गल का व्यापकपना और पुद्गल की पर्याय यह भेद आदि व्याप्य है। रागादि इनका व्याप्य है। आहाहा! भाषा तो सादी है परन्तु भाई! भाव जो है वह है। यह तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर... आहाहा!

एक वार्ता करनेवाला वारोठ हो तो भी गम्भीर वार्ता करे। वारोठ आता है न सबके? पैसा ले। एक बार राणपुर में देखा था। उपाश्रय के साथ है न? वह खत्री आता है न? उसका वारोठ था, परन्तु बड़ा नागर जैसा। सफेद वस्त्र और गृहस्थ व्यक्ति परन्तु खत्री के वारोठरूप से (कहलाता है)। वह उसका क्या कहलाता है वह? लोग साधारण बैठे हों और वह बड़ा राजा जैसा दिखे। उपाश्रय के साथ में। पोपटभाई खत्री नहीं आता? अब तो यहाँ आ गया है न! उसके दो वारोठ है, पटिये पर बैठकर बात करते। आहाहा!

यहाँ भगवान कहते हैं, अभी तो मुनि कहते हैं न? **चैतन्यस्वभाव से व्याप्त जो आत्मा...** आहाहा! इस भेद से व्याप्त आत्मा, आत्मा व्यापक और गुणस्थान के भेद व्याप्य - ऐसा नहीं है। वह पुद्गल व्यापक है और उसका यह व्याप्य है। आहाहा! १०८, १०९, ११० में तो वहाँ लिया है, नहीं? १०८, १०९, ११०, १११, ११२। पुद्गलकर्म व्यापक

है और नये कर्म उनका व्याप्य है। आता है ? १०८, १०९, ११०, १११। आहाहा! क्या इनकी शैली! आहाहा! अन्दर चैतन्य भगवान चिन्तामणि रत्न पूर्णानन्द के नाथ को प्रसिद्ध करने के लिये (ऐसी शैली की है)। आहाहा! आत्मख्याति है न ? आहाहा!

कहते हैं कि जो कर्म है, वह पूर्व का कर्म व्यापक होकर नये कर्म-रजकण नयी जाति है, दूसरी जाति है, तथापि उसकी जाति के हैं, इसलिये उसे कहते हैं कि व्यापक कर्म और नये कर्म आवें, वे उसका व्याप्य हैं। ठीक! पुराने कर्म हैं, वे व्यापक; नये कर्म उनका व्याप्य। अब पर के साथ व्याप्य-व्यापक तो (कहाँ होगा) ? यहाँ तो कहते हैं कि कर्म व्यापक और भेद उसका व्याप्य। भगवान आत्मा व्यापक और चैतन्य उसका व्याप्य परन्तु यह (भेद) व्याप्य इसका नहीं। आहाहा!

चैतन्यस्वभाव से व्याप्त जो आत्मा... देखा ? आहाहा! क्रियाकाण्डियों का रस उड़ जाये, इसमें मुश्किल पड़े, बेचारे को दुःख हो। उसे-बेचारे को कठिन पड़े, इसलिये ऐसा कहे। उसकी दृष्टि में विपरीतता है, उसमें ऐसी बात जँचे नहीं। आहाहा!

चैतन्यस्वभाव से व्याप्त... ये भेद व्याप्य, व्यापक कर्म का है, **उससे भिन्नपने से वे गुणस्थान...** आहाहा! **भेदज्ञानियों के द्वारा...** क्योंकि भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद में जाता है। आहाहा! **भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान हैं, इसलिए भी उनका सदा ही अचेतनत्व सिद्ध होता है।** गुणस्थान आदि भेदज्ञान के अनुभव में नहीं आते, इसलिए उनका अचेतनपना सिद्ध होता है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)